राष्ट्रीय संसाधन केंद्र

हिंदी विषय में उच्च शिक्षा संकाय के लिए

शिक्षण में वार्षिक पुनश्चर्या पाठ्यक्रम (अर्पित) 2019

[Annual Refresher Programme in Teaching (ARPIT) 2019]

रीतिकालीन हिंदी साहित्य

पाठ शीर्षक :	**बिहारी का काव्य वैभव**
पाठ लेखक :	**प्रो. रामजी तिवारी**
पाठ समीक्षक:	1. प्रो. कृष्ण कुमार सिंह, हिंदी एवं तुलनात्मक विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 2. प्रो. अवधेश कुमार, हिंदी एवं तुलनात्मक विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)
समन्वयक	प्रो. अवधेश कुमार, हिंदी एवं तुलनात्मक विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)
सहसमन्वयक	डॉ. रामानुज अस्थाना, हिंदी एवं तुलनात्मक विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

पाठ का उद्देश्य :

1. बिहारी के काव्य से पाठकों को परिचित कराना।
2. बिहारी के श्रृंगार वर्णन को समझाना।
3. बिहारी की भक्ति भावना से परिचित कराना।
4. बिहारी की भाषा शैली एवं अलंकार योजना की जानकारी देना एवं उनका मूल्यांकन करना।

प्रस्तावना :

कविवर बिहारी बहुअधीत, बहुश्रुत, बहुविद्याविद, प्रखर प्रतिभा संपन्न, रीतिकाल के प्रतिनिधि महाकवि हैं। आपने अपने समय के सफल प्रतिनिधित्व के साथ ही परवर्ती काल की आज तक की काव्य–सर्जना को प्रेरित और प्रभावित किया है। आपके विलक्षण काव्य–वैभव का ही प्रभाव है कि आज तक आपके साहित्य पर अलग–अलग दृष्टिकोणों से भी विचार होता रहा है। इसी प्रकार उनके एकमात्र ग्रंथ 'बिहारी सतसई' पर अनेक टीकाएँ भी लिखी जाती रही हैं।

किसी कवि के काव्य–वैभव का आकलन करने के लिए उसके प्रतिपाद्य विषय, अभिव्यंजना–कौशल, शिल्प सौष्ठव, परवर्ती प्रभाव और संवेदनशीलता को आधार बनाया जा सकता हैं। आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्य प्रकाश' में काव्य हेतु को स्पष्ट करते हुए लिखा कि बीजरूप शक्ति (प्रतिभा), जड़, चेतन, लोकवृत्त का ज्ञान, शब्द संपदा, व्याकरण–बोध, विविध कलाओं का ज्ञान, छंद विधान प्रवीणता, महाकवियों की रचनाओं से परिचय, मर्मज्ञों से परामर्श और नित्य अभ्यास कवि के आवश्यक गुण हैं। बिहारी में ये सभी विशेषताएँ विद्यमान थी। कवि को पिता केशवराय से आनुवंशिक दाय के रूप में आपको कवि प्रतिभा मिली थी। नरहरिदास में आपको विधि व शास्त्र ज्ञान प्रदान किया था। पंडितराज जगन्नाथ जैसे महापंडित का सान्निध्य आपको मिला था। शाहजहाँ के दरबार में फारसी भाषा और साहित्य का निकट परिचय प्राप्त हो गया था। ग्रामीण और नागर परिवेश का आपने सूक्ष्म निरीक्षण किया था। नित्य अभ्यास तो आप करते ही थे। इन सभी गुणो से संपन्न कवि का काव्य वैभव यदि अपरिमेय हो जाय तो स्वाभाविक ही कहा जायेगा।

वर्ण्य विषय की दृष्टि से बिहारी के काव्य का केंद्रीय तत्व श्रृंगार ही है। बिहारी सतसई 700 सौ से कुछ अधिक दोहों और सोरठों का संग्रह है जिसमें 558 दोहे शुद्धतः श्रृंगारपरक हैं। इनमें संयोग श्रृंगार, वियोग श्रृंगार, नारी की विविध मुद्राओं, चेष्टाओं, नारी सौदर्य, प्रेमानुभूति की विभिन्न अवस्थाओं, नायिका भेद आदि का समावेश है। 35 दोहे प्रकृति चित्रण के है किंतु इनमें भी श्रृंगार का उद्दीपक रूप अधिक प्रभावी है। इसके अतिरिक्त नीति के 45 और भक्ति के 50 दोहे हैं। आश्रयदाता की प्रशस्ति में केवल 7 दोहे हैं, वह भी वस्तुनिष्ठ और साधार। अन्य शेष दोहे प्रकीर्ण विषयों पर लिखे गए है। इस प्रकार ''प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति'' न्याय के आधार पर बिहारी को श्रृंगारी कवि कहना ही उचित हैं। उस समय दरबारों से जुड़े प्रायः सभी कवि अपने आश्रयदाताओं की रूचि के परितोष के लिए कामवृत्ति को दीप्त करने वाली भावभूमियों, चमत्कारिक उक्तियों, नारी की रूप छटाओं, मुद्राओं चेष्टाओं, व्यंग्योक्तियों आदि पर अधिक बल देते थे। काव्य की सामान्य प्रवृत्ति होने के कारण कवियों में श्रेष्ठता सिद्ध करने की प्रतियोगिता भी रही होगी। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में प्रवाहमान पूर्ववर्ती

सतसई परंपरा में भी श्रृंगार रस की ही प्रधानता रही। हिंदी में केवल तुलसी, रहीम और वृंद ही श्रृंगार परंपरा के अपवाद रहे 'बिहारी सतसई' अपनी अनेक मौलिक उपलब्धियों के साथ एक सुदृद परंपरा का पोषण भी करती है। सतसई की रचना बिहारी ने अपने आश्रयदाता मिर्जा राजा जयसिंह के आग्रह पर की थी इसलिए आश्रयदाता के आमोद–प्रमोदार्थ श्रृंगार रस को केंद्र में रखना स्वाभाविक था।

श्रृंगार वर्णन

रसराज श्रृंगार का स्थायीभाव रति अर्थात् प्रेम है। भाव अंतस का धर्म जिसका केवल अनुभव किया जा सकता है। स्थायी भावों की सहायता के लिए विभाव, अनुभाव, संचारी भाव और सात्विक भाव भी होते है। इन्हीं के सहयोग से स्थायीभाव अपनी चरम तीव्रता में रसरूप में परिणत होकर आनन्दानुभूति प्रदान करता है। भरतमुनि के अनुसार रति, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय ये आठ स्थायी भाव हैं, इन्हीं की परिणति क्रमशः श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक वीभत्स और अद्भुत रसों में होती है। यही विभाव के अवलंब होते हैं। आंतरिक भावों की अभिव्यंजक आंगिक चेष्टाओं को अनुभाव कहा जाता है। स्थायी भावों में संचारित होकर उन्हें उत्कर्ष प्रदान करने वाले प्रभावों को संचारी भाव कहते हैं। हृदय की सत्ववृत्ति से प्रेरित होकर दूसरों के सुख–दुख से तदाकार होने की वृत्ति को सात्विक भाव कहा जाता है। भरतमुनि के अनुसार ''विभावानुभावसंचारिसंयोगात्रसनिष्पत्तिः'' अर्थात इन सभी के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। यह रससूत्र सभी रसों पर लागू होता है। 'बिहारी सतसई' में रसप्रक्रिया का पूर्ण परिपाक प्रस्तुत हुआ है। उनमें सभी रसों के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत हुए हैं किन्तु श्रृंगार रस में उन्हें विलक्षण सिद्धि मिली है।

बिहारी ने श्रृंगार के केंद्रीय तत्व प्रेम पर गंभीरता से विचार किया है। बिहारी के लिए प्रेम एक दिव्य सात्विक भाव है जो तमोगुणी और रजोगुणी भावों के स्पर्श मात्र से दूषित हो जाता है। बिहारी के शब्दों में –

जो चाहो चटक न घटै, मैला होय न भित्त।
रजराजस न छुआइए, नेह चीकने चित्त।।

प्रेम की अथाह गंभीरता ऐसी होती है जिसमें डूबकर रसिक हृदय अपने को कृतार्थ मानते हैं। यदि कोई उसे गोपद की भाँति छिछला समझता है तो यह उसके पशुत्व का लक्षण है। प्रेम को प्राप्त करने के पश्चात् ही सौदर्य भी सार्थक हो पाता है। प्रेम के अनुपात में ही शरीर का सौंदर्य चरितार्थ होता है। किन्तु ध्यातव्य है कि प्रेम का संबंध बिहारी शरीर अथवा लौकिकता से न मानकर हृदय और आत्मा से मानते हैं। सच्चे प्रेम के प्रभाव से प्रिय पात्र के अवगुण भी गुण प्रतीत होते हैं, उसके साथ नर्कवास भी स्पृहणीय बन जाता है, उनका प्रेमपंथ किसी प्रकार अवरूद्ध नहीं होता। प्रेमानुभूति के चरम विकास में प्रिय और प्रेमी में अविभाज्य एकत्व स्थापित हो जाता है। बिहारी लिखते हैं –

प्रिय के ध्यान गही–गही वही वही है नारि ।
आयु आयु ही आरसी लखि रीझति रिझवारि ।।

राधा भी कृष्ण के चरम प्रेमानुभूति में कृष्णमय होकर राधा– राधा का जाप करने लगी थी।

प्रेम और सौंदर्य में घनिष्ठ संबंध है। यह पुराना विवाद हैं कि सौदर्य से प्रेम उत्पन्न होता हैं या प्रेम से सौंदर्य। दूसरे शब्दों में सौंदर्य विषयगत है या विषयीगत। दोनों पक्षों के अपने–अपने सबल और संगत तर्क हैं। बिहारी ने दोनों पक्षों के समर्थन में दोहे लिखे हैं किन्तु अन्ततः स्वीकार करते हैं कि द्रष्टा की सहृदयता और वस्तुगत आकर्षण के सम्यक सामंजस्य से ही वास्तविक सौदर्य की प्रतिष्ठा संभव होती है यथा –

मोही भरोसो रीझ हैं उझकि झांकि इकवार ।
रूप रिझावनहार है, ये नैना रिझवार ।।

बिहारी की यह सौदर्य अवधारणा तर्क संगत और परिपूर्ण है। बिहारी ने आँख, नाक, भौंह, मुख, एड़ी, तलवा, केश, हँसी, कटि, कुच, कपोल, अधर, चिबुक जैसे अंगो का प्रभावपूर्ण वर्णन किया है किन्तु वे सौदर्य की पूर्णता उसकी समग्रता में देखते हैं। अंगो, अलंकारों आदि का वर्णन परंपरा के पालन के लिए किया गया है। रूप की समग्रता का प्रभाव निम्नलिखित दोहे में देखें –

सहज सेत पचतोरिया पहिरत अति छबि होति।
जलचादर के दीप लौं जगमगाति तन ज्योति।।

नायिका झीने सफेद वस्त्र को पहने है। उस महीन वस्त्र से उसकी शरीर कान्ति और दमक उठी है। उसे देखकर ऐसा लगता है जैसे कोई दीप शिखा झीने जल प्रवाह के पीछे अधिक लावण्यवान होकर झलमला रही हो।

रूपपान की नित्य अतृप्त तृषा का यह हाल है कि सलोने रूप को जितना ही पीते हैं प्यास उतनी ही बढ़ती जाती है। रूप सलोना जो ठहरा –

त्यों–त्यों प्यासे ही रहत, ज्यों–ज्यों पियत अघाव
सगुन सलोने रूप की जन चख तृषा बुझाव।।

सौंदर्य वर्णन में कोमलता को भी उसका उपकारक तत्व माना जाना है। कोमलता संयोग से सौंदर्य और भी आकर्षक हो जाता है। सुकुमारता का मार्मिक वर्णन परंपरा से होता आ रहा है और आज तक यह प्रवृत्ति विद्यमान है। बिहारी ने इस परंपरा का पालन ही नही किया अपितु अपनी प्रखर प्रतिभा और सृजनशील कल्पना से उसमें अनेक मौलिक आयाम जोड़े। बिहारी मानते हैं कि रूपवती नायिका के शरीर पर आभूषण दर्पण पर लगे मोरचे की भाँति दिखाई देते हैं। अपनी सुकुमारता में वह इन आभूषणों का भार ढ़ोने में भी अक्षम है–

भूषण भार सँभारिहैं क्यों ये तन सुकुमार ।
सूघे पाय न धर परै सोभा ही के भार ।।

इसी प्रकार नायिका के पैरों की उंगली में पहने हुए बिछुए के दबाव से उसकी उंगली रक्ताभ हो गई है। लगता है उनसे रक्त टपक पड़ेगा। इस कोमलता का वर्णन बिहारी इस प्रकार है –

अरुन बरन तरुणी चरण, अँगुरी अति सुकुमार ।
चुबत सुरंग रंग सी मनो पयि बिछियन के भार ।।

संयोग श्रृंगार

बिहारी ने श्रृंगार की संयोग–वियोग दोनों स्थितियों का मार्मिक चित्रण किया है किंतु उनका मन संयोग श्रृंगार में जितना रमा है उतना विप्रलंभ में नहीं। पूरी रीति परंपरा में संयोग श्रृंगार के प्रति विशेष आकर्षण दिखाई पड़ता है संयोग श्रृंगार में शारीरिक आकर्षण की प्रधानता रहती है। शरीर की केंद्रीयता के कारण विविध रूपों भंगिमाओं, मानसिक विकारों, आंगिक चेष्टाओं, वाचिक प्रस्तुतियों के लिए विशेष अवकाश रहता है। इसकी सिद्धि के लिए सुरति, ऋतुवर्णन, क्रीड़ा, मद्यपान आदि का वर्णन परंपरा से होता रहा है। दर्शन, श्रवण, स्पर्श, संलाप आदि इसके उपकारक तत्व हैं। बिहारी ने अपनी सतसई में प्रथम मिलन, सुरतारंभ, रतिवर्णन, सुरतांत वर्णन, प्रेम क्रीड़ा वर्णन, वन विहार, मद्यपान, जलविहार, हिंडोरा वर्णन, चोर मिहीचिनी आदि के वर्णन से संयोग श्रृंगार को पुष्ट किया गया है। अनुभावों और हावों के सफल प्रयोग से बिहारी की श्रृंगार व्यंजना अत्यंत सजीव और प्रभावी बन गई है। एक मुग्धा नायिका प्रियतम के लिए पान का बीड़ा बनाकर ले आती और प्रियतम के हाथ में देना चाहती है किन्तु रसिक नायक उससे हाथ से खिलाने का आग्रह करता है। नायिका को सहज संकोच होता है। किन्तु नायक की प्रेम संवलित रसिकता अनुभव कर वह मुस्करा पड़ती है साथ उसकी आँखों में लज्जा का भाव उमड़ आता है। उसने आँखे नीची किए, हाथ ऊपर उठाकर नायक मुख में पान बीड़ा पकड़ा दिया ।

हँसि ओठन बिच, कर उचै, किए निचौहें नैन ।
खरे अरे पिय कै पिया, लगी बिरी मुख दैन ।।

दांपत्य प्रेम की यह सात्विक प्रेमानुभूति कितनी सहृदय संवेद्य है। मुग्धा नायिका की चेष्टाओं का इतना सूक्ष्म निरीक्षण और मार्मिक अभिव्यंजन अन्यत्र दुर्लभ है। इस प्रकार की रंजक प्रेम क्रीड़ाओं के असंख्य चित्र बिहारी सतसई में भरे पड़े हैं। बिहारी ने कायिक, वाचिक सात्विक और आहार्य अनुभावों का उपयोग स्थायी भावों के रसरूप में परिणत कराने के लिए किया है। अनुभाव स्थायीभावों की प्रतीति सहृदय को कराते हैं। श्रेष्ठ कवि पारंपरिक ही नहीं मौखिक अनुभावों की उद्‌भावना करता है। कविवर बिहारी ने अनेक स्वतंत्र उद्‌भावनाएँ की है। उदाहरणार्थ –

कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीतपट, कहु मुरली वनमाल ।।

कृष्ण की यह अस्तव्यस्तता उनकी प्रबल व्याकुलता का परिणाम है। कृष्ण की विफलता वस्तुओं का बिखराव, संगठक चेतना के विलोप जैसी जटिल मनोदशा की इतनी सहज और प्रभावपूर्ण अनुभावों की मार्मिक योजना से ही संभव हो सकी है। अनुभावों के विधान में बिहारी को विलक्षण सिद्धि प्राप्त है। हाव अयत्नज आंगिक चेष्आएँ हैं इसके अन्तर्गत लीला, विलास, विच्छति, विव्लोक, किलकिंचित, मोट्टायित, कुहमित विभ्रम, ललित, मद, विह्वत, तपन, मौग्ध्य विक्षेप, कौतूहल, हसित, चकित और केलि जैसे 18 हावों को परिगणित किया जाता है। केलि हाव का एक उदाहरण देखे–

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय ।
सौह करै भौहन हँसे देन कहै नहि जाय।।

राधा ने बतरस के लोभ से कृष्ण वंशी चुराकर रख ली। कृष्ण के आने पर वह शपथपूर्वक नकार देती है। कृष्ण को निराश देखकर वह भौहों से हँस देती है। यह देखकर कृष्ण को विश्वास हो जाता है कि बंशी राधा के ही पास है। किंतु जब मांगते हैं तो वह पुनः नकार देती है इस पर कृष्ण का खीझ उठना स्वाभाविक है। इन केलिमयी चेष्टाओं को केलि हाव कहा जाता है। बिहारी सतसई में सभी 18 प्रकार के हावों के उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं –

वियोग श्रृंगार

नायक–नायिका के विलग हो जाने से वियोग की स्थिति उत्पन्न होती है। वियोग दशा में सच्चा प्रेम शिथिल न होकर विरहाग्नि में तपकर कंचन से कुंदन बन जाता है। वस्तुतः विरह संयोग श्रृंगार की कसौटी है। आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार तो विप्रलंभ के बिना संयोग श्रृंगार की पुष्टि ही नहीं होती– न बिना विप्रलंभेन संयोगः सुख, मश्नुते। विप्रलंभ चार प्रकार निश्चित किए गए हैं– पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण (विरह)। बिहारी ने इन सभी प्रकारों

और उपभेदों का वर्णन किया है। विप्रलंभ की दश वियोगजन्य काम दशाओं का काव्यशास्त्र में उल्लेख किया गया है। ये है अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। इन सभी दशाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति बिहारी ने की है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में ''बिहारी ने तो सभी दशाओं का वर्णन किया है, पर व्याधि विस्तार अधिक है। यद्यपि फारसी के प्रभाव से अनेक विरह दशाओं में चमत्कारिक उक्तियों के प्रति अतिरिक्त आग्रह होने के कारण मार्मिकता की हानि हुई है। यह ऊहात्मकता कहीं–कहीं पर हास्यास्पद भी हो गई है किंतु ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं। वियोग चित्रण में उनका मूर्धन्य स्थान है। पूर्वराग का एक उदाहरण देखें–

हरि छबि जल जब तें परे तब तें छिनु बिहुरै न ।
मरत, ढरत, बूड़त तरत, रहत घरी लौं नैन्।।

इस दोहे में रस का पूर्व परिपाक प्रस्तुत हुआ है। नायक आलंबन है। नायक के प्रति रति स्थायीभाव है, नायक का रूप उद्दीपन का कार्य कर रहा है, बार–बार होने वाला अश्रुपात अनुभाव है, स्मृति संचारी भाव है। इस प्रकार रसनिष्पत्ति की सारी सामग्री इस दोहे में समा गई है। प्रेम पीर का मार्मिक बोध सहज संप्रेषित हो गया है। वस्तुतः यही गागर में सागर है।

भाव व्यंजना

भाव मानव मन की निगूढ़ निधि है। मानव मन भावों का एकमात्र अधिष्ठान है। काव्य में निहित भाव ही पाठक या श्रोता को प्रभावित करते हैं। भाव कविता का अनिवार्य तत्व है। बिहारी ने भावों की सफल अभिव्यंजना की है। स्थायी भाव के साथ विभाव, अनुभाव और संचारी के संयोग रस की व्यंजना होती है। बिहारी के दोहों में इसका पूर्णतः पालन हुआ है। भाव की चार अवस्थाओं को स्वीकार किया गया है। जब दो परस्पर विरोधी भाव, एक ही विभाव अथवा एकाधिक विभाओं द्वारा समवेत काव्यास्वाद उत्पन्न करते हैं तो उसे भाव संधि कहा जाता है। जहाँ पर पूर्ववर्ती भाव के शमित होने पर किसी विरोधी भाव का उदय होता है और उदय ही आस्वाद का निमित्त बनता है तब भावोदय की स्थिति बनती है। जहाँ पर भाव की शांति में भावबोध का उत्कर्ष होता है वहाँ भावशांति की स्थिति मानी जाती है। दो परस्पर

विरोधी भावों के सम्मिलित स्वरूप को भावशबलता की संज्ञा दी जाती जाती है। इसी प्रकार भाव और रस के अनौचित्यपूर्ण एवं सत्वविरहित अनुभव की स्थिति में विशुद्ध रसानुभूति न होने के कारण केवल रसाभाव और भावाभास की स्थिति बन पाती है। बिहारी सतसई में भावसंधि, भावोदय और भावशांति, भावशबलता और भावाभास जैसी अवस्थाओं का हृदयग्राही अभिव्यंजन किया है। भावशबलता का एक उदाहरण उनकी भावाभिव्यक्ति क्षमता को जानने के लिए पर्याप्त होगा–

कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत है नैनन ही सब बात ।।

इस दोहे में नायिका की असहमति, खीझ, प्रसन्नता और लज्जा की शबलता को बड़े प्रभावी ढ़ग से रेखांकित किया गया है। अतः इस में भावशबलता की स्पष्ट स्थिति है।

नायिका भेद

बिहारी ने कोई लक्षण ग्रंथ नहीं लिखा। किंतु अपने से पूर्व लिखे गये संस्कृत के लक्षण ग्रंथों के साथ सूरदास की 'साहित्य लहरी', नन्ददास की 'रसमंजरी', कृपाराम की 'हिततरंगिणी', रहीम के 'बरबै नायिकाभेद' और केशव की 'रसिकप्रिया' जैसे रीति ग्रंथों को अवश्य पढ़ा होगा। इन ग्रंथों में नायिकाओं की प्रवृत्तियों, अवस्थाओं, मनौवैज्ञानिक दशाओं आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। बिहारी को रीतिग्रंथों में निरूपित लक्षणों का गहन ज्ञान था। आलोचकों ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि जिस स्पष्टता से बिहारी ने लक्षणों का निरूपण किया है वैसा रीतिग्रंथकारों से भी नही बन पाया है। डॉ. हरवंशलाल शर्मा के अनुसार ''उनका (बिहारी का) नायिका भेद अधिक व्यापक है, जिसमें ऐसे भी उदाहरण हैं जो आचार्यों ने लक्षित नहीं किए है।''

संबंधों की दृष्टि से नायिका के तीन भेद किए गए हैं– स्वकीया, परकीया और साधारणी। स्वकीया के अन्तर्गत मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा तीन भेद किए जाते है। मुग्धा के 4, मध्या 3 और प्रौढ़ा के 3 उपभेद होते हैं। ये सारे भेदोपभेद बिहारी सतसई में सफलतापूर्वक

चित्रित किए गए हैं, परकीयी नायिका के 6 भेद किए गए हैं– गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना और मुदिता। तीसरी कोटि साधारणी की है जो किसी स्वार्थ साधन के लिए प्रेम व्यापार में संलग्न होती है। ये नायिकाएँ समाज में समाहित नहीं होती। बिहारी ने इनसे संबंधित केवल एक दोहा लिखा है। नायक के प्रेम के आधार पर जेष्ठा–कनिष्ठा भेद भी किए गये हैं। अवस्था भेद से नायिकाओं को आठ वर्गों में बाँटा गया है– स्वाधीन पतिका, खण्डिता, अभिसारिका, कलहान्तरिता, वासकसज्जा, विप्रलब्धा, उत्कंठिता, प्रोषितपतिका। कुछ आचार्यों ने दशा के अनुसार भेद गिनाए हैं। जितने भी संभाव्य भेदोपभेद गिनाए गए हैं, सभी का प्रभावपूर्ण चित्रण बिहारी सतसई में किया गया है। इन चित्रणों से भी श्रृंगार की पुष्टि की गई है। नायक के प्रकारों के उदाहरण भी बिहारी सतसई में उपलब्ध हैं। दक्षिण नायक का एक उदाहरण –

गोपिन संग निसि सरद की रमत रसिक रस रास ।
लहाछेह अतिगतिन की सबनु लखे सब पास।।

यथापि बिहारी की मूल चेतना श्रृंगार रस पर ही केंद्रित है किंतु हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, शांत, अद्भुत, बीभत्स जैसे अन्य रसों के भी उत्कृष्ट उदाहरण उपलब्ध हैं। भक्त हृदय की शरणागति यातना या यह उद्दाम स्वरूप शांतरस उत्कृष्टतम स्वरूप प्रस्तुत करता है–

हरि कीजतु तुमसौं यहै बिनती बार हजार।
जिहि तिहि भांति डरयौ रहौ परे रहयो दरबार ।।

भक्ति भावना

रीतिकालीन कवियों में भक्तिपूर्ण उक्तियाँ मिलती हैं किन्तु उनमें कबीर, सूर, तुलसी या मीरा जैसी तन्मयता दिखाई नहीं देती। किन्तु संवेदनशील हृदय और समर्पण वृत्ति के कारण उनकी श्रृंगारिक अनुरक्ति के बीच भक्ति की प्रतीति यथास्थान दीप्त हो उठती हैं। इतना अवश्य है श्रृंगारी कवि भक्तिभाव में भी उक्ति वैचित्र्य के प्रति सावधान बने रहते हैं। बिहारी मूलतः कवि थे। इसलिए समय–समय पर जैसी अनुभूति होती थी, उसे अभिव्यक्त कर देते थे।

उनकी भक्तिभावना को किसी दार्शनिक मतवाद या संप्रदाय में सीमित नहीं किया जा सकता। उनके दोहों में अद्वैत, निर्गुण, कृष्ण भक्ति, राम भक्ति, युगल उपासना, सखी भाव आदि के उदाहरण मिलते हैं किंतु यह बहुलता ही यह सिद्ध कर देती हैं कि वे किसी के भी प्रति प्रतिबद्ध नहीं थे। बिहारी के अनेक भक्ति परक दोहे ऐसे हैं जो रागात्मक अनुबंध से दीप्त गहन भक्ति भावना को प्रस्तुत करते हैं। उनके विरज विशुद्ध हृदय की यह अदम्य विश्वास से भरी यह उक्ति ध्यान देने योग्य है

कौन भाँति रहिहे विरदु अब देखिबी मुरारि ।
बीधे मोसों आइके गीधे गीधहि तारि।।

गीध को तारने वाले राम और मुरारि का एक साथ स्मरण भी ध्यातव्य है। इस दोहे का घनत्व इतना अधिक है कि सूर जैसे महान भक्तों के विस्तृत वर्णन भी फीके पड़ जाते हैं। सखा भाव से दिया गया यह उपालंभ कितना मार्मिक है –

थोड़े ही गुन रीझिबो बिसराई वह बानि।
तुमहू स्याम मनौ भये आजु कालि के दानि।।

बिहारी सांसारिक आकर्षणों और भोगों से उपराम होकर भवसागर पर करने की चिंता से आक्रांत होकर कहते है –

पतवारी माला पकरि और न कहू उपाय ।
तरि संसार पयोधि कौ हरि नावैं करि नाउ।।

बिहार दैन्य भाव से स्वीकार करते हैं कि यदि भगवान ने उनके कर्मों का निरीक्षण किया तो उद्गार की कोई संभावना नहीं है। इसलिए कहते हैं –

तौ बलिये भलियै बनी नागर नन्द किशोर ।
जौ तुम नीके कै लख्यो मो करनी की ओर ।।

निंबार्क की युगल उपासना पद्धति का भी बिहारी में प्रभाव परिलक्षित होता है। यह भी विचारणीय है कि बिहारी सत्सई का आरंभ राधा जी की प्रार्थना से किया गया है। प्रत्येक शतक का आरंभ भी धर्मपरक दोहे से किया गया है और अंत में ''सतसई'' को ''हरि राधिका प्रसाद'' घोषित किया गया है। यह भी उनकी आस्तिक आस्था और भक्ति भावना का द्योतक है। बिहारी के भक्तिपरक दोहों की संख्या केवल 50 है। किन्तु हृदय की अतल गहराई से निकली भावानुभूतियाँ अभिव्यक्ति की लालित्यमयी सघनता के कारण मनोहारी और अवलोकनीय बन गई है ।

प्रकृति चित्रण

बिहारी ने अपने अन्य समकालीनों की प्रकृति के उद्दीपक रूप को ही मुख्य रूप से चित्रित किया है। आलम्बन रूप भी खोजने पर मिल जाते हैं, पर वे अत्यल्प हैं। इतना अवश्य है कि ऋतुओं के वर्णन में प्रकृति का स्वतंत्र आलंबन रूप सगुण–साकार हो सका है। कहीं कहीं पर मानवीय क्रिया व्यापारों के आरोप से उसे आलंबन के समीप पहुँचा देता हैं। यथा –

छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध।
ठोर ठौर झौरत झपत भौंर झौंर मधु गंध ।।

यहाँ पर बसंत ऋतु का उद्दीपक होने पर भी यह चित्र अपनी सजीवता और स्वाभाविकता के कारण आलंबर सा प्रतीत होता है। मानवीकरण के द्वारा भी प्रकृत वस्तुओं में चेतनता का आरोप किया गया है –

धुरषा होहिं न अलि उठै धुवां धरनि चहुँकोद।
जारत आवत जगत कौ पावस प्रथम पयोद।।

प्रकृति के मानवीकरण में बिहारी को आशातीत सफलता मिली है। प्रकृति जगत उपमानों का भी बिहारी ने सार्थक प्रयोग किया है। विशेषोक्ति, प्रतीप, व्यतिरेक आदि अलंकारों और अन्योक्तियों को प्रभावी बनाने के लिए बिहारी ने प्राकृतिक उपादानों का प्रचुर प्रयोग

किया है। ऋतुओं के वर्णन में प्रकृति का स्वतंत्र स्वरूप बड़ी सफलता से हुआ है। शरद के चित्रण में युवती का लावण्य चित्ताकर्षक है।

अरुण सरोरूह कर चरन दृग खंजन मुख चंद ।
समय आइ सुन्दरि सरद काहि न करति अनंद।।

अलंकार विधान

अलंकारों का शास्त्रीय प्रतिपादन सर्वप्रथम भरत मुनि ने किया। कालान्तर में दण्डी, भामह, वामन, आदि आचार्यों ने इसे व्यापकता प्रदान की। काव्य में अलंकार सौन्दर्य के साधक उपादान है। अग्निपुराण में अलंकार के स्फुरण और गुणों से युक्त रचना को ही काव्य माना गया है। अलंकारवादी जयदेव के अनुसार काव्य को अलंकारहीन मानना वैसे ही वे तुका है जैसे अग्नि को शीतल मानना–

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णामनलंकृती।।

रीतिकाल के प्रायः सभी कवियों ने जयदेव के 'चन्द्रालोक' को अपना आदर्श मानकर अलंकार महत्ता को सिद्ध करने के लिए अलंकार ग्रंथों की रचना की। अलंकार साधन रूप न रहकर साध्यरूप बन गया। इसकी अतिशयता काव्य रचना में इतनी बड़ी है कि कविता कामिनी इसके भार से दबने और लड़खड़ाने लगी। कविवर बिहारी अपने समय के प्रभाव से अछूते तो नहीं थे किन्तु कुछ अपवादों को छोड़कर उनका संपूर्ण काव्य रसास्वादन को मुख्य उद्देश्य मानते हुए अलंकारों को साधनस्वरूप ही मानता रहा।

शब्दालंकार

अलंकार दो प्रकार के होते हैं– शब्दालंकार और अर्थालंकार। कविवर बिहारी ने दोनों का सफल विधान किया है। शब्दालंकार में अर्थगौरव को गौण और शब्दों की कलाबाजी मुख्य माना जाता है इसमें अनुभूति की गहराई और रसानुभूति प्रायः बाधित हो जाती है। बिहारी ने अर्थगत रमणीयता और रस सिद्धि का सदैव ध्यान रखा है। उदाहरणार्थ –

रनित–भृंग–घंटावली झरित दान मद नीर ।
मंद–मंद आवतु चल्यों कुंजरु–कुंज–समीर ।।

इसमें कुंज, समीर और हाथी के रूपक से दोनों की समान धर्मिता की अनुभूति होती होती है। अनुप्रास, वीप्सा और यमक आदि अलंकारों से उनमें सामंजस्य स्थापित होता है। इनसे उत्पन्न नाद तत्व घंटाधारी हाथी की मंद गति और लतांतराल से रुक–रुककर आते मंद समीर एक संगीतमय ध्वनि की अनुभूति करा देते हैं।

कुछ दोहों में बिहारी श्लेष, यमक, अनुप्रास और मुद्रा अलंकारों के प्रयोग से चमत्कार मोह का उदाहरण प्रस्तुत किया है। इनमें अनुभूति प्रवणता और अर्थ गांभीर्य का अभाव है। उदाहरणार्थ एक खंडिता नायिका का चित्रण करते हुए बिहारी ने अनेक पुष्पों का परिगणन किया है किन्तु यह स्पष्ट नहीं होता कि खण्डिता के भाव से उनका क्या संबंध है–

कत लपटइयतु मोगरै सोन जुही निसि सेन।
जिहि चंपक बरनी किए, गुल्लाला रंग नैन।।

कुछ अपवादों को छोड़ दें तो बिहारी के शब्दालंकार विधान में रसोद्रेक क्षमता का पूरा निर्वाह किया गया है। वे केवल संकलन न होकर अनुभूतिपरक अर्थ का भी संप्रेषण करते हैं।

अर्थालंकार

जिस अलंकार से अभिप्रेत अर्थ में दीप्ति अथवा अर्थ गौरव की सिद्धि होती है उसे अर्थालंकार कहते हैं। इनकी चार श्रेणियाँ हैं– साम्यमूलक, वैषम्यमूलक, श्रृंखलामूलक और न्यायमूलक। साम्यमूलक अलंकार चार भेद है– अभेद प्रधान साम्यमूलक, भेदप्रधान साम्यमूलक, प्रतीतिप्रधान साम्यमूलक, व्यंग्य प्रधान साम्यमूलक। अभेद प्रधान में प्रस्तुत–अप्रस्तुत में रूप, गुण, धर्म के से अभेद स्थापित कर दिया जाता है। रूपक, संदेह, अपन्हुति, परिणाम, उल्लेख आदि इसी कोटि के अलंकार हैं। भेद प्रधान में उपमेय–उपमान में साम्य होने पर भी उनकी स्वतंत्र पहचान बनी रहती है। प्रतीप, दीपक, दृष्टांत, प्रतिवस्तूपमा, सहोक्ति, विनोक्ति,

निदर्शना, व्यतिरेक, उपमा, अनन्वय, स्मरण आदि की गणना इसी कोटि में होती है। जब उपमेय और उपमान की समता कथन न करके केवल प्रतीति कराई जाती तब प्रतीति प्रधान समता मूलक अलंकार की स्थिति बनती है। जैसे अतिशयोक्ति और उत्प्रेक्षा। जब अलंकार सामान्य अर्थ के स्थान पर व्यंग्यार्थ पर केंद्रित होता है तब व्यंग्यप्रधान समतामूलक अलंकार की स्थिति बनती है। अप्रस्तुत प्रशंसा, व्याजस्तुति पर्यायोक्ति इसी श्रेणी के अलंकार हैं। संप्रेष्य काव्यार्थ में चमत्कार पैदा करने के लिए जब आधार पदार्थों में विषमता दिखाई जाती है तब वैषम्य मूलक अलंकार की सृष्टि होती है। विरोधाभास, विभावना विशेषोक्ति, विषम, असंगति और व्याघात इसी कोटि के अलंकार हैं। श्रृंखलामूलक अलंकार की सृष्टि तब होती है जब एक या अनेक वस्तुओं का वर्णन एक श्रृंखला में आबद्ध हो जाता है। कारणमाला, एकावली, मालादीप और सार अलंकारों की गणना इसी कोटि में होती है। जब किसी नियम, तर्क, युक्ति या लोकव्यवहार से प्रेरित अभिव्यक्ति द्वारा चमत्कार की सृष्टि होती है तब न्यायमूलक अलंकार की स्थिति बनती है।

बिहारी ने इन सभी प्रकारों और उपभेदों को ऐसी कुशलता से प्रस्तुत किया है जो किसी रीतिकार के लिए भी सहज संभव नहीं है। अलंकारों का विधान उन्होंने प्रायः साधनरूप में ही किया है। चमत्कारों की सृष्टि उन्होंने रूप, गुण, भाव एवं काव्यवस्तु की सापेक्षता में की है। पारंपरिक उपमानों के साथ ही आपने देश काल परिस्थिति के अनुसार नये उपमानों को ग्रहण किया। अनेक उपमानों की मौलिक उद्‌भावना की। एक उदाहरण देखें–

बाल छवीली तियन में बैठी आप छिपाइ।
अरगट ही फानूस सी, परगट होति लखाइ।।

किसी रूपसी तरुणी के लिए दीपशिखा एक पारंपरिक उपमा है। असंख्य कवियों ने इसका उपयोग किया है किन्तु बिहारी ने नायिका के लिए अप्रस्तुत फानूस की कल्पना की है। दीप शिखाओं के बीच जगमगाते ज्योतिपुंज फानूस की कल्पना बिहारी की अपनी मौलिक देन है। इसे उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव से ही प्राप्त किया होगा।

बिहारी की शैली और भाषा

बिहारी अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए दोहा जैसे 48 मात्राओं वाले छोटे से छंद को चुना। 'सतसई' में 8 सोरठे भी हैं, जो उतने ही छोटे हैं। अल्पतम शब्दों के लिए अवकाश के कारण शब्दों के संकेतो का सहारा लेना पड़ता है। उसके भी कुछ पाठक या श्रोता के विवेक पर छोड़ना पड़ता है। बिहारी वर्ण्य विषय के अनुसार अपनी शैली को स्पंदित करते रहते है। स्थूल रूप से उनकी शैली को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है –

1. व्यंजना प्रधान अलंकृत शैली
2. व्यंजना प्रधान अनलंकृत शैली
3. कल्पना प्रधान ऊहात्मक शैली
4. सूक्तिकार की वक्र कथन शैली

इन सभी शैलियों में बिहारी की अभिव्यंजना प्रयत्न प्रसूत न होकर सहज और स्वाभाविक है। केवल ऊहात्मक शैली कहीं–कहीं हास्यापद हो गई है। सभी शैलियों में काव्यगत चमत्कार उत्पन्न करने का उपक्रम किया गया हैं। शब्द, अर्थ, अलंकार, रस और वृत्तिगत चमत्कारों का सर्वोत्तम रूप बिहारी में सगुण–साकार हुआ है। शैलीकारों में बिहारी का मूर्धन्य स्थान है।

बिहारी की भाषा का प्रधान गुण माधुर्य है। ओज और प्रसाद की स्थिति प्रायः उपेक्षणीय है। कविता में भाषा का माधुर्य गुण भारतीय आचार्यों और अनेक विदेशी विद्वानों द्वारा समर्पित और प्रशंसित रहा है। बिहारी ने अपनी काव्याभिव्यक्ति के लिए 'ब्रज भाषा' को अपनाया। ब्रजभाषा स्वभावतः मधुर कोमल और लचीली है। इसमें सरलीकरण और संक्षेपण की प्रवृत्ति होती है। इसलिए कवियों और संगीतकारों के लिए ब्रजक्षेत्र के बाहर भी समाहित है। भाषा पर असाधारण प्रभुत्व के कारण ही बिहारी दोहा जैसे छोटे छंद में सफलतापूर्वक अपने को अभिव्यक्त कर सके। बिहारी की भाषा दृष्टि उदार है। उन्होंने तत्सम, अर्थतत्सम, तद्भव, अरबी, फारसी, उर्दू और ग्रामीण शब्दों का बड़ी कुशलता से प्रयोग किया है। उनकी भाषा

प्रयोग शैली सामासिक है। यह सामासिकता दोहा जैसे लघु छंद के लिए उपकारक सिद्ध हुई है। अनेक भाषाओं शब्दों के समावेश के बाद भी उनकी भाषा की साहित्यिक गरिमा स्खलित नहीं होती। मुहावरों और लोकोक्तियो के अनुकूल प्रयोग से उनकी भाषा प्रांजल और प्रभावक्षम बनी है। स्वर्गीय राधाकृष्णदास ने बिहारी को 'मुहाबरों का बादशाह' कहा है। स्वर्गीय पं. पद्म सिंह शर्मा की गई उनकी भाषा संबंधी टिप्पणी द्रष्टव्य है–

''बिहारी सतसई की भाषा सर्वश्रेष्ठ, परम रसीली है। उसे छोड़ जो दूसरी भाषा पढ़ते है, उनसे सहृदयता मचल मचल कर कहती है– जीभ निबौरी क्यों लगे बौरी चांखि अँगूर'' बिहारी की द्राक्षारस संपृक्त भाषा के आस्वादन के बाद अन्य कवियों द्वारा प्रयुक्त भाषाएँ निबौरी की भाँति कडुई लगती हैं।'' इस कथन में अतिरिक्त आग्रह हो सकता है किन्तु इससे इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि बिहारी की भाषा सरस, मधुर, आस्वाद्य, परितोषदायी और संप्रेषणक्षम है। उनकी काव्य विभूति की प्रतिष्ठा में प्रयुक्त भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है।

बिहारी की वाग्विभूति इतनी समृद्ध एवं परिपूर्ण है कि आजतक हिन्दी कविता को किसी न किसी रूप में प्रेरित और प्रभावित करती रही है। रसराज श्रृंगार की विभिन्न स्थितियों के मार्मिक चित्रण के साथ आपने सभी रसों की विवेचना की है। भाषा के प्रबल अधिकार ने आपकी अभिव्यक्ति को मधुर और रमणीय बनाया है। दोहा और सोरठा जैसे छोटे छंद में विस्तुत प्रसंगों का संगुंफन विशद अर्थ गर्भता और अलंकृत व्यंजना की समाहिति आपके काव्य वैभव को विशिष्ट बना देती है। रीतिग्रंथकारों से अधिक सटीक और निर्दोष नायिका भेद का वर्णन, काव्यशास्त्रीय स्थापनाओं में मौलिक उद्भावनाओं के योग से आपके काव्य की प्रभविष्णुता दीप्त हो उठी है। बिहारी यद्यपि नागर संस्कृति के पक्षधर थे किन्तु लोकजीवन को उन्होंने बहुत समीप से देखा था, उसका सूक्ष्म निरीक्षण किया था। राजनीतिक परिवेश से वे परिचित थे। यही कारण है कि उनके काव्य में नागर और ग्रामीण जीवन का सजीव चित्रण हुआ है। नीतियाँ और सूक्तियाँ भी सार्थक जीवन को प्रेरित करने में कालातीत भूमिका निभाती हैं। बिहारी को चित्रकला, संगीत, ज्योतिष, गणित, समाज विज्ञान, काव्यशास्त्र जैसे अनेक विद्यानुशासनों और हिंदी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी जैसी अनेक भाषाओं और उनके

साहित्य का ज्ञान था, इससे उनकी काव्याभिव्यक्ति से प्रौढ़ता आई है। गाथा सप्तसती, आर्या सप्तसती, अमरुक शतक जैसे ग्रंथों की स्पष्ट छाया उनके काव्य में दिखाई देती है। यह उनके व्यापक अध्ययन का प्रमाण है।

परवर्ती प्रभाव की व्यापकता भी बिहारी के काव्य–वैभव का पुष्ट प्रमाण है। परवर्ती कवियों ने बिहारी से प्रेरणा ग्रहण की। 'बिहारी सतसई' की 50 से अधिक टीकाएँ लिखी गईं। अनेक विदेशी विद्वानों ने भी सतसई के काव्य वैभव को सराहा है। संस्कृत, गुजराती, अंग्रेजी, उर्दू जैसी अनेक भाषाओं में बिहारी सतसई का अनुवाद संस्कृत में होना विशेष महत्व रखता है। इम्पीरियल गज़ेटियर में केवल तीन हिन्दी कवियों का उल्लेख है तुलसी, सूर और बिहारी। गज़ेटिअर में बिहारी को सूरदास का उत्तराधिकारी और सतसई को भारतीय भाषाओं में सर्वाधिक लालित्यपूर्ण कला–सृष्टि माना गया है। बिहारी उन्मुक्त स्वभाव के कला प्रेमी, जिंदादिल भावुक कवि थे। उन्होंने स्वाभिमानी, आनन्दमयी, अपरिग्रही जीवन शैली के पक्षधर थे। जातीय गौरव के प्रति सावधान और सचेत रहते थे। उनकी बेधक व्यंग्योक्तियाँ उनके स्वभाव का द्योतन करती हैं। बिहारी सतसई में प्रत्येक रुचि, प्रत्येक संस्कार और प्रत्येक मानसिकता के लोगों के लिए न्यूनाधिक सामग्री उपलब्ध है। इतना विषय वैविध्य और व्यंजना की इतनी कलात्मक सिद्धि अन्यत्र दुर्लभ है। बिहारी का वास्तविक वैभव उनके अभिव्यक्ति गुण और गांभीर्य में हैं। वे चमत्कार और रस के सम्यक समन्वय से अपनी व्यंजना को उत्कर्षित करते हैं जिससे उनकी उक्तियाँ सरस और अनिवर्चनीय हो गई है। इसीलिए सतसई को ब्रजभाषा के ग्रंथों में सर्वोत्कृष्ट माना गया है–

ब्रजभाषा बरनी सबै कविवर बुद्धि विशाल।
सबको भूषण सतसई, रची बिहारी लाल।।

आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा–

''श्रृंगार रस ग्रथों में जितनी ख्याति और जितना मान बिहारी सतसई का हुआ उतना और किसी का नहीं। इसका एक–एक दोहा हिन्दी साहित्य में रत्न माना जाता है। मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए, वह बिहारी के दोहो में अपने चरमोत्कर्ष को पहुँचा है।'' राधा

चरण गोस्वामी भावावेश में यहाँ तक कह देते हैं– ''यदि सूर–सूर तुलसी ससी, उड्गन केशवदास है।'' तो बिहारी पीयूषवर्षी मेध है, जिसके उदय होते ही सबका प्रकाश आच्छन्न हो जाता है फिर जिसकी वृष्टि से कवि कोकिल कुहकने, मनोमयूर नृत्य करने और चतुर चातक चहकने लगते हैं। यदि इसे अतिरिक्त उत्साह मान लिया जाय तो भी इसमें संदेह नहीं कि बिहारी श्रृंगारिक मुक्तककारों में सर्वश्रेष्ठ हैं।'' उनकी काव्य विभूति का प्रभाव क्षमता को रेखांकित करते हुए किसी ने ठीक ही कहा है–

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर ।
देखत में छोटे लगै, घाव करै गंभीर।।

अंत में डॉ हरवंशलाल शर्मा की टिप्पणी से इस चर्चा को समाप्त करेंगे। उनका मानना हैं– ''जिस कवि की कला ने जनसाधारण से लेकर राजा महाराजा तक, सामान्य हिन्दी ज्ञान रखने वाले से लेकर संस्कृत के प्रकांड पंडितों तक, ब्रज क्षेत्र से लेकर गुजराती मराठी आदि प्रांतीय भाषाओं के क्षेत्र तक और देश से लेकर विदेश तक के आलोचकों को रस से आप्लावित किया हो वह कोई सामान्य स्रष्टा नही कहा जा सकता। निःसंदेह बिहारी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ मुक्तककार, भारत के यशस्वी महाकवि और विश्व के आदरणीय कलाकार के रूप में सदैंव याद किये जायेंगे।''